कार्यशील महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि

डॉ सन्तेश्वर कुमार मिश्र,

सहायक आचार्य समाजशास्त्र विभाग, नेहरु ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज

भारतीय परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक प्रस्थिति का अवलोकन किया जाय तो विदित होता है कि, एक ओर इन्हें शास्त्रीय विवेचना में ज्ञान, धन और शक्ति स्वरूपा सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान किया गया है; तो दूसरी ओर इनके देवों– ब्रह्मा, विष्णु और महेश; की सेविका के रूप में पुरुष की अधीनता के औचित्य को सिद्ध किया गया है। कुल मिलाकर सामाजिक स्तर पर भी इन्हें एक ओर माता, बहन और भार्या के रूप में पूज्यनीय, आदरणीय और सहधर्मिणी का स्थान प्रदान किया गया है, तो दूसरी ओर अनेक सामाजिक–सांस्कृतिक और आर्थिक निर्योग्यताओं से युक्त कर पुरुष की दासी, सेविका, कमजोर अबला आदि सिद्ध कर घर के चहारदीवारी में कैद कर दिया गया है। इस तरह महिलाओं को किसी–न–किसी तरह समता और स्वतंत्रता के अधिकारों से वंचित रखने सम्बन्धी संहिताओं को लागू किया जाता रहा है।

किन्तु, आज परिस्थितियाँ तेजी से बदल रही हैं और महिलाएँ शिक्षा और कौशल को प्राप्त कर एक कामकाजी कर्मी के रूप में स्वयं को सिद्ध करने की दिशा में अग्रसर हैं। ऐसी स्थिति में इनकी सामाजिक परिवर्तन में सहभागिता का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है।

महिलाओं के प्रस्थिति का ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो विदित है कि, भारतीय सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं की प्रस्थिति लम्बे समय से विभेद एवं विषंगति की शिकार रहा है। इसका कारण यह नहीं है कि, हम जैविकीय अथवा मानसिक रूप से उन्हें दोषपूर्ण व निम्न मानते हैं, बल्कि हमारे समाज में पवित्रता सम्बन्धी संकीर्ण मानसिकता और इसके आधार पर सामाजिक संहिताओं का निर्माण इसके लिए बहुत हद तक जिम्मेदार रहा है।

महिलाओं की वैदिक समाज में अस्तित्व एवं योगदान से गृहस्थ आश्रम के आदर्श स्वरूप में प्राप्त दृष्टिगत है। वैदिकयुगीन गृह का अस्तित्व महिला के अस्तित्व में ही समाहित किया गया था।[1] इस काल में महिला समाज पूज्य मानी जाती थी। महिलाओं की दृष्टि से वैदिक समाज भारतीय इतिहास का सार्वधिक आदर्श समाज रहा है, जिसमें महिलाएँ समस्त अधिकारों का पूर्णता के साथ उपयोग किया था।[2] अथर्ववेद में कहा गया है कि, ''नववधू तू जिस घर में जा रही है वहाँ की साम्राज्ञी है, तेरे सास–ससुर, देवर व अन्य व्यक्ति तुझे साम्राज्ञी समझते हुए तेरे शासन से आनन्दित हों।''[3] इसी में आगे कहा गया कि, ''जायापत्य धुमती, वांच तदतु शान्तिवाम्'' अर्थात् बहु घर में आते ही गृहस्थी की बागडोर सम्भाल ले, आते ही घर की साम्रागी बन जाये।[4] इस युग में पति की पूर्णता पत्नी के अस्तीत्व में ही निहित मानी जाती थी।[5] पत्नी के रूप में महिला निश्चित ही पति की अर्द्धांगिनी व सम्मानित पद पर थी।

इस काल की महिला मातृ–रूप में देवी के समान पूज्य थीं। पत्नी को 'जाया' का अभिधान प्रदान कर हमारे आर्य मनीषियों ने उन्हें गौरवपूर्ण स्थान दिया था जिसके गर्भ में स्वामी स्वयं पुत्र–रूप में जन्म ग्रहण करे, वही 'जाया' हैं। इस काल में पर्दा–प्रथा का पूर्णतः अभाव था।[6] कन्याएँ निर्मुक्त होकर युवकों के साथ अध्ययन करती थीं एवं आर्थिक गतिविधियों में

योगदान देती थीं। वे अध्यापनादि क्षेत्र में भी जाती थीं। महिलाएँ खुली आम–सभाओं में भाग लेती थी। वेद–युगीन महिलाओं जनतन्त्रीय सभाओं की शासन सम्बन्धी बहसों में भी भाग लेती थी।[7]

पी0एन0 प्रभु ने 'हिन्दु सोशियल आर्गनाइजेशन' में लिखा है कि जहॉ तक शिक्षा का सम्बन्ध था, स्त्री–पुरूषों में कोई भेद नहीं था और इस युग में दोनों की सामाजिक प्रस्थिति समान रूप से महत्वपूर्ण थी।[8] वैदिक युग में पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह आदि कुरीतियाँ नहीं थी। इस युग में महिला पावन एवं पवित्र समझी जाती थी, किन्तु 'मासिक धर्म' के समय वह अपवित्र एवं अस्पृश्य मानी जाती थी।[9]

उत्तर–वैदिक युग (ईसा से 600 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के 300 वर्ष बाद तक) में महिला की बाह्य–क्षेत्रीय स्वतन्त्रता कुछ कम हो गई थीं।[10] इस युग में पुत्री की अपेक्षा पुत्रागमन अधिक मांगलिक एवं आनन्ददायक माना जाता था, फिर भी पुत्री का स्थान सम्मानजनक था। ***आपस्तम्ब गृह सूत्र*** से ज्ञात होता है कि यात्रा से लौटने पर पिता पुत्र की भॉति पुत्री को भी मन्त्रोच्चारण सहित आशिर्वाद देता था।[11] महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने का पूरा अधिकार था। महिलाओं का भी उपनयन संस्कार का चलन था, क्योंकि गृह सूत्रों में महिलाओं के समावर्तन का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि महिलाएँ वेदाध्ययन करती थीं।[12] विवाह संस्कार के समय वर एवं वधू सम्मिलित रूप से अनुवादक मंत्रों का उच्चारण करते थे।[13] अतः महिलाओं की शिक्षा युवकों से कम नहीं था। ***पाणिनी*** ने भी 'उपाध्याय' एवं 'आचार्या' महिलाओं पर प्रकाश डाला हैं।[14] सूत्राध्ययन से स्पष्ट होता है कि, विवाह के समय कन्याएँ पूर्णतः वयस्क एवं समागम के योग्य होती थी।[15]

महाकाव्य युगीन समाज में महिला का स्थान धीरे–धीरे परिवर्तन होने लगा।[16] महाभारत में कन्या जन्म को अशुभ मानने का मात्र एक ही संकेत मिलता है।[17] यद्यपि इस तदयुगीन समाज में कन्या को लक्ष्मी माना जाता था।[18] कन्या की पवित्रता के कारण ही, सिंहासनारोहण या राजतिलक जैसे शुभ कार्यों में कन्या की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती थी। पुत्री की रक्षा करना पितृ–धर्म माना जाता था।[19] अनाथ कन्याओं की सुरक्षा राजा पितृवत् करता था। घर में कन्या का कार्य मुख्यतः अतिथि सत्कार करना होता था।[20]

धर्मशास्त्र काल से हमारा अभिप्राय विशेषतः तीसरी शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक के समय से है। तीसरी शताब्दी के बाद याज्ञवल्क्य संहिता, विष्णु संहिता और पाराशर संहिता की रचना हुई, जिसमें वेदों के नियमों को पूर्णतया तिलांजलि देकर मनुस्मृति को ही व्यवहार की कसौटी मान लिया गया। यह काल सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता का युग था। महिलाएँ भी इस संकीर्ण विचारधारा का शिकार बनीं। इस काल में महिलाएँ 'गृहलक्ष्मी' से 'याचिका' के रूप में दिखाई देने लगीं। 'माता' के रूप में सम्मानित होने वाली महिला का स्थान 'सेविका' ने ले लिया। जीवन और शक्ति–प्रदायनी देवी अब निर्बलताओं की प्रतीक बन गयी। ''महिला, जो किसी समय अपने प्रबल व्यक्तित्व के द्वारा साहित्य और समाज के आदर्शों को प्रभावित करती थीं, अब परतंत्र, पराधीन, निस्सहाय और निर्बल बन चुकी थी।[21]

इस काल में महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकारों से पूर्णतया वंचित कर दिया गया और महिलाओं को मानसिक रूप से भी अयोग्य तथा दुर्बल सिद्ध करने के भ्रमपूर्ण प्रचार किये जाने लगे। कन्या का विवाह 10 वर्ष अथवा अधिक से अधिक 12 वर्ष की आयु तक कर देने का विधान बनाया गया। विवाह पूर्णतया पिता का दायित्व हो गया, जिसमें लड़की की इच्छा का कोई महत्त्व नहीं था, जैसा कि जातक कथाओं से स्पष्ट होता

है। इस युग में कुलीनता को विवाह का आधार मानने के कारण बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन बढ़ा। वास्तविकता यह है कि महिलाओं की स्थिति के पतन में इस काल को आधारभूत कहा जा सकता है, जिसके बाद महिलाएँ एक 'वस्तु' (Thing) बन गयीं जिन्हें पुरूष अपनी इच्छानुसार किसी प्रकार उपयोग में ला सकता था।

स्पष्ट है कि, उत्तर वैदिक काल के पश्चात् महिलाओं की स्थिति में गिरावट आने लगा और धर्मशास्त्र काल एवं महाकाव्यकाल में इनकी स्थिति बद–से–बद्तर हो गयी। मुस्लिम आक्रमण के पश्चात् तो महिलाएँ पशुवत् जीवन के लिए बाध्य कर दी गयीं। स्त्रियों की स्थिति में इस गिरावट को उन्नत करने का प्रयत्न अंग्रेजी शासन काल से अंकुरित होने लगा। इस सन्दर्भ में उन्नीसवीं सदी के चौथे दशक में न्यायालयों के फैसले छपने लगे। 1875 में इंडियन लॉ रिपोर्ट कानून बनने के बाद से अंग्रेज न्यायाधीश पुराने फैसलों का अध्ययन कर कानून लागू कर सकते थे। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के अंत तक हिन्दू कानून केस–लॉ के रूप में विकसित हुआ। इसी तारतम्यता में सन् 1929 में सती प्रथा निषेध अधिनियम बना और सन् 1856 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह कानून बना। इस कानून की दूसरी धारा के अनुसार पुनर्विवाह करने पर विधवा के अपने पूर्व पति की संपत्ति पर अधिकार समाप्त हो जाते थे। परन्तु अधिनियम के अनुसार पुनर्विवाह के बाद भी विधवा अपने पूर्व पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी हो सकती थी। किन्तु इसका एक नकारात्मक पहलू यह था कि, बहुसंख्यक समाजों की विधवाएँ इस कानून के बनने से पहले अपनी परम्पराओं के अनुसार पुनर्विवाह कर सकती थीं, लेकिन इस कानून की वजह से उन्हें अपने परम्परागत अधिकारों से वंचित होना पड़ा।[22]

उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज सरकार ने सती प्रथा उन्मूलन (1829), विधवा पुनर्विवाह (1856), बालिका हत्या पर पाबंदी (1870) कानून पारित किए। लेकिन हिन्दुओं के उत्तराधिकार तथा विवाह संबंधी कानूनों को छुआ तक नहीं। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में कई स्थानीय और राष्ट्रीय महिला संगठनों का प्रादुर्भाव हुआ।[23] इन संगठनों ने सामाजिक सुधारों के साथ–साथ मत देने का अधिकार भी माँगा। 1929 में, बाल–विवाह पर रोक कानून को पास करवाने के बाद ये संगठन तलाक, उत्तराधिकार तथा संपत्ति के अधिकार के मामले उठाने लगे। 1934 में, आल इण्डिया वीमन्स कान्फ्रेंस ने हिन्दू कोड का प्रस्ताव पास किया। 1937 में हिन्दू वीमन्स राइट टू प्रापर्टी कानून पास हुआ। 1934 से 1951 तक हिन्दू कोड पर बहस चलती रही। अत्यधिक विरोध के कारण नेहरू को कानून बनाने की प्रक्रिया रोकनी पड़ी। प्रथम चुनाव में भारी जीत के बाद 1955 में, हिन्दू विवाह कानून, सन् 1956 में हिन्दू उत्तराधिकार कानून, हिन्दू अल्पवयस्क और संरक्षण कानून तथा हिन्दू गोद लेने तथा पालने का कानून बना।[24]

हिन्दू कानून की भाँति अंग्रेजों ने मुस्लिम कानून को भी सूचीबद्ध करने की कोशिश की। 1937 का शरीयत एप्लिकेशन कानून इस विधि के दोहरेपन को समाप्त करने के लिए बनाया गया। इसके पश्चात् सारी मुसलमान स्त्रियाँ मुस्लिम निजी कानून के तहत आ गईं।

स्वतंत्र भारत के संविधान में लैंगिक विषमताओं को समाप्त समानता की व्यवस्था अग्रांकित अनुच्छेदों में की गयी है–

- 14 : कानून के समक्ष समानता,
- 15 (3) : महिलाओं एवं बच्चों हेतु विशेष सुविधा,
- 16 : नौकरी में समानता,
- 19 : समान अभिव्यक्ति,
- 21 : प्राण व दैहिक स्वतंत्रता से वंचित न करना,

- 23 एवं 24 : नारी क्रय–विक्रय व बेगार प्रथा पर रोक,
- 39 (घ) : समान कार्य समान वेतन,
- 243 (घ) : पंचायती राज व नगरीय संस्थाओं में 73वें व 74वें संशोधन के माध्यम से महिला आरक्षण,
- 42 : महिला प्रसूति सहायता,
- 47 : पोषाहार जीवन–स्तर तथा लोक स्वास्थ्य में सुधार करना सरकारी दायित्व है,
- 330 : 84वें संशोधन द्वारा लोकसभा में महिला आरक्षण,
- 332 : 84वें संशोधन द्वारा विधानसभा में महिला आरक्षण, इत्यादि।

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्वेद : 3/53/4 (गृहणी गृहमुच्येत्).
2. ऋग्वेद : 3/53/4.
3. ऋग्वेद : 14/14.
4. ऋग्वेद : 3/30/20.
5. शतपथ ब्राह्मण : 5/21/10 एवं ऐतरेय ब्राह्मण : 1/2/5.
6. Alteker, A.S. : Women in Hindu Civilisation, p. 93.
7. Alteker, A.S. : Ibid. p. 93.
8. Prabhu, P.N. : Hindu Social Organisation, p. 258.
9. ऋगवेद : 1/167/3.
10. तैत्तिरीय संहिता : 6/2,1/1.
11. मंत्रायणी संहिता : 4/7/4 ''संस्मात्पुमांस सभं यानि न स्त्रियाँ''
12. आपस्तम्ब गृह सूत्र : 15/13.
13. आश्वलायन गृह सूत्र : 3/8/11.
14. काठक गृह सूत्र : 25/23.
15. गौतम गृह सूत्र : 2/1/19–28.
16. पारस्कर गृह सूत्र : 1/2.
17. Majumdar Veena : Symbol of Power, p. 8.
18. महाभारत : 5/3/7.
19. महाभारत : 13/2/14.
20. महाभारत : 6/128/63.
21. महाभारत : 13/46/20–21.
22. महाभारत : 2/67.
23. Desai, Neera and Krishnaraj, M. : Women and Society in India, p. 27-28.
24. Idid, p. 28-29.
25. मैकाइवर आर0एम0 एवं पेज सोसाइटी: एन इन्ट्रोडक्टरीएनालिसिस, मैकमिलन सी0 एच0 (1974) कं0 लन्दन ,पृ013।
26. दुबे, श्यामाचरण, (1982): मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 109।
27. मैलिनोवस्की, वी (1959): क्राइम एण्ड कल्चर इन सेवेज सोसाइटी, लिटिल फिल्ड एण्ड एडम्स, न्यू जर्सी, पृ0 99।
28. मुरडाक, जी0 पी0 (1960): सोशल स्ट्रक्चर ,मैकमिलन कं0 न्यूयार्क, पृ01।
29. वर्गेस ई0एवं लॉक एच0जे0(1953) द फैमिली फ्राम इन्स्टीटयूशन टू कम्पैनियनशिप, द्वितीय संस्करण, अमेरिकन बुक कं0, न्यूयार्क, पृ0 –241.
30. दुबे, श्यामाचरण, (1982), वही.